International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 5, September 2021 |

भारत में राष्ट्रवाद

DR.BRAJKISHORE

Assistant Professor, Political Science, Government Girls College, Ajmer, Rajasthan, India

सार

राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जन समूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाएँ पाई जाती हों। राष्ट्रवाद के निर्णायक तत्वों मे राष्ट्रीयता की भावना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पायी जानेवाली सामुदायिक भावना है जो उनका संगठन सुदृढ़ करती है। अंग्रेजों के शासनकाल में नवीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था तथा नवीन प्रशासनिक प्रणाली और नई शिक्षा के विस्तार से नए वर्गों का उदय हुआ। ये वर्ग प्राचीन भारतीय समाज में नहीं पाए जाते थे। ये अंग्रेजी शासनकाल में पूंजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न हुए। किन्तु देश के विभिन्न भागों में इन नए वर्गों का एक ही प्रकार से उदय नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि देश के विभिन्न भागों में एक ही साथ अंग्रेजी शासन की स्थापना नहीं हुई और न उनमें एक ही साथ सुधार लागू किए गए। सबसे पहले बंगाल मे अंग्रेजी शासन की स्थापना हुई और वहीं से पहले जमींदार वर्ग उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार बंगाल तथा बम्बई में सबसे पहले बड़े उद्योगों की स्थापना की गई और वहाँ पर उद्योगपतियों और श्रमिकों के वर्गों का निर्माण हुआ, अन्त में जब सम्पूर्ण देश मे अंग्रेजी शासन की स्थापना हुई तो सब जगह राष्ट्रीय स्तर पर नए सामाजिक वर्ग दिखलाई पड़ने लगे। इन नए वर्गों के निर्माण मे पूर्व ब्रिटिश सामाजिक व आर्थिक संरचना का महत्त्वपूर्ण योगदान था। उदाहरण के लिए अंग्रेजों के आने के पहले बनियों में व्यापार और उद्योग अधिक था और अंग्रेजी शासनकाल में भी इन्हीं लोगों ने सबसे पहले पूँजीपति वर्ग का निर्माण किया, हिन्दुओं की तुलना में मुस्लिम जनसंख्या मे शिक्षा का प्रसार कम होने के कारण उनमे बुद्धिजीवी, मध्यमवर्ग और बुर्जुआ वर्ग हिन्दू समुदायों की तुलना में बहुत बाद में दिखलाई दिया। इस प्रकार अंग्रेजी शासनकाल में जमींदार वर्ग, भूमि जोतने वाले, भूस्वामी वर्ग, कृषि श्रमिक, व्यापारी वर्ग, साहूकार वर्ग, पूँजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग, छोटे व्यापारी और दुकानदार वर्ग, डाक्टर, वकील, प्रोफेसर, मैनेजर, क्लर्क, आदि व्यवसायी वर्ग और विभिन्न कारखानों और बगीचों में काम करनेवाले श्रमिक वर्ग का उदय हुआ। इनमें से अनेक वर्गों के हित परस्पर विरुद्ध थे और उन्होंने अपने-अपने हितों की रक्षा करने के लिए अनेक नवीन आन्दोलन छेड़े।

परिचय

जब भारतीय संस्कृति की बात आती है तब कई पश्चिम के विद्वान इस व्याख्या को भूलकर यह मानने लगते हैं कि ब्रिटिश लोगों के कारण ही भारत में राष्ट्रवाद की भावना ने जन्म लिया; राष्ट्रीयता की चेतना ब्रिटिश शासन की देन है और उससे पहले भारतीय इस चेतना से अनभिज्ञ थे। पर शायद यह सत्य नहीं है।

भारत के लम्बे इतिहास में, आधुनिक काल में, भारत में अंग्रेजों के शासनकाल मे राष्ट्रीयता की भावना का विशेषरूप से विकास हुआ। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से एक ऐसे विशिष्ट वर्ग का निर्माण हुआ जो स्वतन्त्रता को मूल अधिकार समझता था और जिसमें अपने देश को अन्य पाश्चात्य देशों के समकक्ष लाने की प्रेरणा थी। पाश्चात्य देशों का इतिहास पढ़कर उसमें राष्ट्रवादी भावना का विकास हुआ। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत के प्राचीन इतिहास से नई पीढ़ी को राष्ट्रवादी प्रेरणा नहीं मिली है।[1,2,3]

वस्तुतः भारत की राष्ट्रीय चेतना वेदकाल से अस्तित्वमान है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में धरती माता का यशोगान किया गया हैं। माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (भूमि माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ)। विष्णुपुराण में तो राष्ट्र के प्रति का श्रद्धाभाव अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है। इस में भारत का यशोगान 'पृथ्वी पर स्वर्ग' के रूप में किया गया है।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महागने।
यतोहि कर्म भूरेषा ह्यतोऽन्या भोग भूमयः॥
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत-भूमि भागे।
स्वर्गापस्वर्गास्पदमार्गे भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

> इसी प्रकार वायुपुराण में भारत को अद्वितीय कर्मभूमि बताया है। भागवतपुराण में तो भारतभूमि को सम्पूर्ण विश्व में 'सबसे पवित्र भूमि' कहा है। इस पवित्र भारतभूमि पर तो देवता भी जन्म धारण करने की अभिलाषा रखते हैं, ताकि सत्कर्म करके वैकुण्ठधाम प्राप्त कर सकें।

कदा वयं हि लप्स्यामो जन्म भारत-भूतले।

कदा पुण्येन महता प्राप्यस्यामः परमं पदम्।

महाभारत के भीष्मपर्व में भारतवर्ष की महिमा का गान इस प्रकार किया गया है;

अत्र ते कीर्तिष्यामि वर्ष भारत भारतम्
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोवैवस्वतस्य।
अन्येषां च महाराजक्षत्रियारणां बलीयसाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारताम्॥

गरुड पुराण में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की अभिलाषा कुछ इस प्रकार व्यक्त हुई है-

स्वाधीन वृत्तः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि ते मृताः॥

रामायण में रावणवध के पश्चात राम, लक्ष्मण से कहते हैं-

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

(अर्थ : हे लक्ष्मण ! यद्यपि यह लंका स्वर्णमयी है, तथापि मुझे इसमें रुचि नहीं है। (क्योंकि) जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान हैं।

विचार-विमर्श

कुछ लोग भारतीय राष्ट्रवाद को एक आधुनिक तत्त्व मानते हैं। इस राष्ट्रवाद का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल और बहुमुखी रही है। भारत मे अंग्रेजों के आने से पहले देश में ऐसी सामाजिक संरचना थी जो कि संसार के किसी भी अन्य देश मे शायद ही कहीं पाई जाती हो। वह पूर्व मध्यकालीन यूरोपीय समाजों से आर्थिक दृष्टि से भिन्न थी। भारत विविध भाषा-भाषी और अनेक धर्मों के अनुयायियों वाले विशाल जनसंख्या का देश है। सामाजिक दृष्टि से हिन्दू समाज जो कि देश की जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग है, विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित रहा है। स्वयं हिन्दू पन्थ में किसी विशिष्ट पूजा पद्धति का नाम नहीं है। बल्कि उसमें कितने ही प्रकार के दर्शन और पूजा पद्धतियाँ सम्मिलित है। इस प्रकार हिन्दू समाज अनेक सामाजिक और धार्मिक विभागों में बँटा हुआ है। भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना तथा विशाल आकार के कारण यहाँ पर राष्ट्रीयता का उदय अन्य देशों की तुलना मे अधिक कठिनाई से हुआ है। शायद ही विश्व के किसी अन्य देश में इस प्रकार की प्रकट भूमि में राष्ट्रवाद का उदय हुआ हो। सर जॉन स्ट्रेची ने भारत के विभिन्नताओं के विषय मे कहा है कि "भारतवर्ष के विषय में सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण जानने योग्य बात यह है कि भारतवर्ष न कभी राष्ट्र था, और न है, और न उसमें यूरोपीय विचारों के अनुसार किसी प्रकार की भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक एकता थी, न कोई भारतीय राष्ट्र और न कोई भारतीय ही था जिसके विषय में हम बहुत अधिक सुनते हैं।" इसी सम्बन्ध मे सर जॉन शिले का कहना है कि "यह विचार कि भारतवर्ष एक राष्ट्र है, उस मूल पर आधारित है जिसको राजनीति शास्त्र स्वीकार नहीं करता और दूर करने का प्रयत्न करता है। भारतवर्ष एक राजनीतिक नाम नही हैं वरन एक भौगोलिक नाम है जिस प्रकार यूरोप या अफ़्रीका।"[5,7,8]

उपरोक्त विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में राष्ट्रवाद का उदय और विकास उन परिस्थितियों में हुआ जो राष्ट्रवाद के मार्ग में सहायता प्रदान करने के स्थान पर बाधाएँ पैदा करती है। वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज की विभिन्नताओं में मौलिक एकता सदैव विद्यमान रही है और समय-समय पर राजनीतिक एकता की भावना भी उदय होती रही है। वी°ए° स्मिथ के शब्दों में "वास्तव मे भारतवर्ष की एकता उसकी विभिन्नताओं में ही निहित है।" ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारतीय समाज में नये विचारों तथा नई व्यवस्थाओं को जन्म मिला है इन विचारों तथा व्यवस्थाओं के बीच हुई क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीय विचारों को जन्म दिया।

भारतीय राष्ट्रवाद को समझने के लिए उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। भारत में अंग्रेजो के आने से पहले भारतीय ग्राम आत्मनिर्भर समुदाय थे। वे छोटे-छोटे गणराज्यों के समान थे जो प्रत्येक बात में आत्मनिर्भर थे। ब्रिटिश पूर्व भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि और कुटीर उद्योगों पर आधारित थी और सदियों से ज्यों-की-त्यों चली आ रही थी। कृषि और उद्योग में तकनीकी स्तर अत्यन्त निम्न था। समाजिक क्षेत्र में परिवार, जाति पंचायत और ग्रामीण पंचायत सामाजिक नियन्त्रण का कार्य करती थीं। नगरीय क्षेत्र में कुछ नगर राजनैतिक, कुछ धार्मिक तथा कुछ व्यापार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी। अधिकतर राज्यों की राजधानी किसी न किसी नगर में थी। नगरों में अधिकतर लघु उद्योग प्रचलित थे। इन उद्योगों को राजकीय सहायता प्राप्त होती थी। अधिकतर गाँवों और नगरों में परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान बहुत कम होता था, क्योंकि यातायात और सन्देशवाहन के साधन

बहुत कम विकसित थे। इस प्रकार राजनैतिक परिवर्तनों से ग्राम की सामाजिक स्थिति पर बहुत कम प्रभाव पड़ता था। विभिन्न ग्रामों और नगरों के एक दूसरे से अलग-अलग रहने के कारण देश में कभी अखिल भारतीय राष्ट्र की भावना उत्पन्न नहीं हो सकी। भारत में जो भी राष्ट्रीयता की भावना थी, वह अधिकतर धार्मिक और आदर्शवादी एकता की भावना थी, वह राजनैतिक व आर्थिक एकता की भावना नहीं थी। लोग तीर्थयात्रा करने के लिए पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण भारत का दौरा अवश्य करते थे और इससे देश की धार्मिक एकता की भावना बनी हुई थी, किन्तु सम्पूर्ण देश परस्पर संघर्षरत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, जिनमे बराबर युद्ध होते रहते थे। दूसरी ओर ग्रामीण समाज इन राजनैतिक परिवर्तनों से लगभग अछूते रहते थे। भारतीय संस्कृति मुख्यरूप से धार्मिक रही है। इसमें राजनैतिक तथा आर्थिक मूल्यों को कभी इतना महत्त्व नहीं दिया गया, जितना कि आधुनिक संस्कृति में दिया जाता है। भारतीय संस्कृति की एकता भी धार्मिक आदर्शवादी एकता है। उसमें राष्ट्रीय भावना का अधिकतर अभाव ही दिखता है।

भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा का अंकुर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से उगने लगा था किन्तु यह धीरे-धीरे विकसित होता रहा अन्त मे 1857 ई0 में पूर्ण हो गया। अतः भारतीय राष्ट्रीय जागृति का काल उन्नीसवीं शताब्दी का मध्य मानना उचित ही होगा। भारत में राष्ट्रवाद के जन्म के कारण जो राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ वह विश्व में अपने आप में एक अनूठा आन्दोलन था भारत में राजनीतिक जागृति के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक जागृति का भी सूत्रपात हुआ। वास्तव मे सामाजिक तथा धार्मिक जागृति के परिणामस्वरूप राजनितिक जागृति का उदय हुआ। डॉ॰ जकारिया का मत है कि ”भारत का पुनर्जागरण मुख्यतः आध्यात्मिक था। इसने राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का रूप धारण करने से बहुत पहले अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया।“ इस रूप मे भारतीय राष्ट्रीय जागृति यूरोपीय देशों में हुई राष्ट्रीय जागृति से भिन्न है। भारत मे राष्ट्रवादी विचारों के उदय और विनाश के लिए निम्नलिखित कारण माने जाते हैः

समाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन

भारत मे राष्ट्रीय जागृति पैदा करने मे 19 वीं शताब्दी में हुए सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। देश की सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही थी और धर्म के नाम पर समाज मे अन्धविश्वास और कुप्रथाएँ पैदा हो गई थी। इन आन्दोलनों ने एक ओर धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया तो दूसरी ओर भारत में राष्ट्रीयता की भाव भूमि तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार के आन्दोलनों मे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसायटी आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं, जिसके प्रवर्तक क्रमशः राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, एवं श्रीमती एनी बेसेन्ट आदि थे। इन सुधारकों ने भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया तथा उन्हें भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा का ज्ञान कराया, उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता के बारे में पता चला।

इन महान व्यक्तियों में राजा राम मोहन राय को भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत कहा जा सकता है। उन्होंने समाज तथा धर्म मे व्याप्त बुराईयों को दूर करने हेतु अगस्त 1828 ई0 मे ब्रह्म समाज की स्थापना की। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा, छुआ-छूत जाति मे भेदभाव एवं मूर्ति पूजा आदि बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके प्रयासो के कारण आधुनिक भारत का निर्माण सम्भव हो सका। इसलिए उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता कहा जाता है। डॉ॰ आर0 सी0 मजुमदार ने लिखा है कि राजा राम मोहन राय को बेकन तथा मार्टिन लुकर जैसे प्रसिद्ध सुधारकों की श्रेणी में गिना जा सकता है। ए0सी0 सरकार तथा के0के0 दत्त का मानना है कि राजा राम मोहन राय के आधुनिक भारतवर्ष में राजनीति जागृति एवं धर्म सुधार का आध्यात्मिक युग प्रारम्भ किया वे एक युग प्रवर्तक थे। इसलिए डॉ॰ जकारिया ने उन्हें सुधारकों का आध्यात्मिक पिता कहा है। बहुत से विद्वान उन्हें आधुनिक ’भारत का पिता’ तथा ’नये युग का अग्रदूत’ मानते हैं। राजा राममोहन राय ने भारतीयों के लिए राजनीतिक अधिकारों की माँग की। 1823 ई0 में प्रेस आर्डिनेन्स के द्वारा समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इस पर राजा राम मोहन राय ने इस आर्डिनेन्स का प्रबल विरोध किया और उसे रद्द करवाने का हर सम्भव किया इसके पश्चात् उन्होंने ज्यूरी एक्ट एक आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। डॉ॰ आर0सी0 मजुमदार के शब्दों में ”राजा राम मोहन राय“ पहले भारतीय थे जिन्होंने अपने देशवासियों की कठिनाई तथा शिकायतों को ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया और भारतीयों को संगठित होकर राजनीतिक आन्दोलन चलाने का मार्ग दिखलाया उन्हें आधुनिक आन्दोलन का अग्रदूत होने का भी श्रेय दिया जा सकता है।“

राजा राममोहन राय के बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान सुधारक हुए। जिन्होंने 1875 ई0 में बम्बई में 'आर्य समाज' की नींव रखी। आर्य समाज एक साथ ही धार्मिक और राष्ट्रीय नवजागरण का आन्दोलन था इसने भारत और हिन्दू जाति को नवजीवन प्रदान किया। स्वामी दयानन्द ने न केवल हिन्दू धर्म तथा समाज मे व्याप्त बुराईयों का विरोध किया अपितु अपने देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार भी किया।[1] उन्होंने ईसाई धर्म कि कमियों पर प्रकाश डाला और हिन्दू धर्म के महत्व का बखान कर भारतीयों का ध्यान अपनी सभ्यता व संस्कृति की ओर आकर्षित किया। उन्होंने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को फिर से स्थापित किया और यह बताया कि हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण संस्कृति है। उनका मानना है कि वेद ज्ञान के भण्डार है और संसार मे सच्चा हिन्दू धर्म है, जिसके बल पर भारत विश्व में अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित कर गुरु बन सकता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में निर्भीकतापूर्वक लिखा है

विदेशी राज्य चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज्य की तुलना मे कभी भी अच्छा नहीं हो सकता।

एच0 बी0 शारदा ने लिखा है कि-

राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति स्वामी दयानन्द का मुख्य उद्देश्य था। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया और अपने देशवासियों को विदेशी माल के प्रयोग के स्थान पर स्वदेशी माल स्वदेशी माल के प्रयोग की प्रेरणा दी। उन्होंने सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार किया।

श्रीमती एनी बेसेन्ट ने लिखा है-

स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सबसे पहले यह नारा लगाया था, कि भारत भारतीयों के लिए है।

स्वामी विवेकानन्द ने यूरोप और अमेरिका में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। उन्होंने अंग्रेजों को यह बता दिया कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से महान है और वे बहुत कुछ भारतीय संस्कृति से सीख सकते हैं। इस प्रकार उन्होंने भारत में सांस्कृतिक चेतना जागृत की तथा यहाँ के लोगों को सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारत का स्वतन्त्र होना आवश्यक है। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों की राजनीतिक स्वाधीनता का समर्थन किया जिससे राष्ट्रीय भावनाओं को असाधारण बल मिला। भगिनी निवेदिता के अनुसार स्वामी विवेकानन्द भारत का नाम लेकर जीते थे। वे मातृभूमि के अनन्य भक्त थे और उन्होंने भारतीय युवकों को उसकी पूजा करना सिखाया।

थियोसोफिकल सोसाइटी की नेता श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। श्रीमती एनी बेसेन्ट एक विदेशी महिला थीं, जब उसके मुँह से भारतीयों ने हिन्दू धर्म की प्रशंसा सुनी तो वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। जब उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता का ज्ञान हुआ तो उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु आन्दोलन आरम्भ कर दिया।[1,2]

सारांश यह है कि 19वीं शताब्दी के सुधारकों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न की। उन्होंने ऐसा वातावरण तैयार किया जिसके कारण भारत स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त कर सका। ए. आर. देसाई ने इस सम्बन्ध मे लिखा है कि ये आन्दोलन कम अधिक मात्रा मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता के लिए संघर्ष थे और उनका चरम लक्ष्य राष्ट्रवाद था।

भारत की राजनीतिक एकता

1707 ई0 के बाद भारत में राजनीतिक एकता का लोप हो चुका था किन्तु अंग्रेजों के समय लगभग सम्पूर्ण भारत का प्रशासन एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन आ गया था। समस्त साम्राज्य में एक जैसे कानून एवं नियम लागू किए गए। समस्त भारत पर ब्रिटिश सरकार का शासन होने से भारत एकता के सूत्र मे बँध गया। इस प्रकार देश में राजनीतिक एकता स्थापित हुई। यातायात के साधनों तथा अंग्रेजी शिक्षा ने इस एकता की नींव को और अधिक ठोस बना दिया जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से भारत का एक रूप हो गया। डॉ॰ के0वी0 पुन्निया के शब्दों में "हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत एक सरकार के अधीन था और इसने जनता में राजनीतिक एकता को जन्म दिया।"

ऐतिहासिक अनुसंधान

विदेशी विद्वानों की खोजों ने भी भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं को बल प्रदान किया। सर विलियम जोन्स, मैक्समूलर, जैकोवी, कोलब्रुक, ए॰बी॰ कीथ, बुनर्फ आदि विदेशी विद्वानों ने भारत की संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और उनका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। अंग्रेजों द्वारा संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन देने से संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार हुआ। इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद करने के पाश्चात् यह बताया कि ये ग्रन्थ संसार की सभ्यता की अमुल्य निधियाँ हैं। पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन भातीय कलाकृतियों की खोज करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया है कि भारत की सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीन और श्रेष्ठ संस्कृति है। इससे विश्व के सम्मुख प्राचीन भारतीय गौरव उपस्थित हुआ। जब भारतीयों को यह पता चला कि पश्चिम के विद्वान भारतीय संस्कृति को इतना श्रेष्ठ बताते हैं, तो उनके मन में आत्महीनता के स्थान पर आत्मविश्वास की भावनाएँ जागृत हुई। और उन्होंने उसकी श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द ने भी भारतीयों को उनकी संस्कृति की महानता के ज्ञान से अवगत कराया।[2]

इन अनुसंधानों ने भारतीयों के मन में एक नया ज्ञान और उत्साह जागृत किया। इससे उनके मन मे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि फिर हम पराधीन क्यों हैं? डॉ॰ आर॰सी॰ मजूमदार के कथनानुसार "यह खोज भारतीयों के मन में चेतना उत्पन्न करने मे असफल नहीं हो सकती थी, जिसके परिणामस्वरूप उसके हृदय राष्ट्रीयता की भावना व देश भक्ति से भर गए।" श्री के एम पाणिक्कर लिखते है कि इन ऐतिहासिक अनुसंधान ने भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया और उन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करना सिखलाया। इन खोजों से अपने भविष्य के सम्बन्ध मे भारतीय आशावादी बन गए।

पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव

भारतीय राष्ट्रीयधारा में पश्चिमी शिक्षा ने सराहनीय योगदान दिया। 1825 ई0 मे लार्ड मैकाले के सुझाव पर भारत मे शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को निश्चित किया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय चेतना को जड़ से नष्ट करना था। रजनी पाम दत्त ने सही लिखा है, "भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रारम्भ किए जाने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 5, September 2021 |

का पूर्णरूप से लोप हो जाए और एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हों, किन्तु रुचि विचार शब्द और बुद्धि से अंग्रेज हो जाए।" इस उद्देश्य में अंग्रेजों को काफी सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई, क्योकि शिक्षित भारतीय लोग अपनी संस्कृति को भुलकर पाश्चात्य संस्कृति का गुणगान करने लगे। परन्तु पाश्चात्य शिक्षा से भारत को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ। इससे भारत में राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई अतः दृष्टि से पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए एक वरदान सिद्ध हुई।

अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के कारण भारतीय विद्वानों ने पश्चिमी देशों के साहित्य का अध्ययन किया। जब उन्होंने मिल्टन, बर्क, हरबर्ट स्पेन्सर, जॉन स्टुअर्ड मिल आदि विचारकों की कृतियों का ज्ञान प्राप्त हुआ, तो उनमे स्वतन्त्रता की भावना जागृत हुई। भारतीयों पर पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव का वर्णन करते हुए ए.आर. देसाई लिखते हैं कि "शिक्षित भारतीयों ने अमेरिका, इटली और आयरलैण्ड के स्वतन्त्रता संग्रामों के सम्बन्ध में पढ़ा। उन्होंने ऐसे लेखकों की रचनाओं का अनुशीलन किया, जिन्होंने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वाधीनता के सिद्धान्तों का प्रचार किया है। ये शिक्षित भारतीय भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के राजनीतिक और बौद्धिक नेता हो गए।" इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि राजा राम मोहन राय, दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, उमेश चन्द्र बनर्जी आदि नेता अंग्रेजी शिक्षा की ही देन हैं। अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीय नेताओं के दृष्टिकोण का विकास हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक भारतीय इग्लैण्ड गए और वहाँ के स्वतन्त्र वातावरण से बहुत प्रभावित हुए। भारत आने के पश्चात् उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया क्योंकि वे यूरोपीय देशों की भाँति अपने देश में भी स्वतन्त्रता चाहते थे। श्री गुरमुख निहालसिंह लिखते है कि "इग्लैण्ड में रहने से उन्हें स्वतन्त्र राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधि का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाता था, वे स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का मूल्य समझ जाते थे तथा उनके मन मे जमी हुई दासता की मनोवृत्ति घर कर जाती थी।"

अंग्रेजी भाषा लागू होने से पूर्व भारत के विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती थी। इसलिए वे एक-दूसरे के विचारों को नहीं समझ सकते थे। सम्पूर्ण भारत के लिए एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता थी, जिसे अंग्रेज सरकार ने अंग्रेजी भाषा लागूकर पूरा कर दिया। अब विभिन्न प्रान्तों के निवासी आपस में विचार विनियम करने लगे और इसने उन्हें राष्ट्र के लिए मिलकर कार्य करने की प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। सर हेनरी काटन के अनुसार ”अंग्रेजी माध्यम से और पाश्चात्य सभ्यता के ढंग पर शिक्षा ने ही भारतीय लोगों की विभिन्नताओं के होते हुए भी एकता के सूत्र में आबद्ध करने का कार्य किया। एकता पैदा करनेवाला अन्य कोई तत्त्व सम्भव नहीं था, क्योंकि बोली का भ्रम एक अविछिन्न बाधा थी। श्री के.एम. पणिक्कर लिखते हैं, ”सारे देश की शिक्षा पद्धति और शिक्षा का माध्यम एक होने से भारतीयों की मनोदशा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके विचारों, भावनाओं और अनुभूतियों की एक रसता होनी कठिन न रही। परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीयता की भावना दिन प्रतिदिन प्रबल होती गई।“[2,3]

सारांश यह है कि पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए वरदान सिद्ध हुई। डॉ॰ जकारिया ने ठीक ही लिखा है, ”अंग्रेजों ने 125 वर्ष पूर्व भारत में शिक्षा का जो कार्य आरम्भ किया था, उससे अधिक हितकर और कोई कार्य उन्होंने भारतवर्ष में नहीं किया है।“ इसलिए प्रायः यह कहा जाता है कि भारतीय राष्ट्रीयता की भावना पश्चिमी शिक्षा का पोषण शिशु था।

इस प्रकार पश्चिमी शिक्षा ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना में नवजीवन का संचार किया। लार्ड मैकाले ने 1833 ई0 में कहा, ”अंग्रेजी इतिहास मे वह गर्व का दिन हागा जब पाश्चात्य ज्ञान से शिक्षित भारतीय पाश्चात्य संस्थाओं की माँग करेंगे।“ उसका यह स्वप्न इतनी जल्दी साकार हो जाएगा इसकी कल्पना भी उसने कभी न की थी।

भारतीय समाचार-पत्र तथा साहित्य

बंकिमचन्द्र चटर्जी ने ‘वन्देमातरम्’ का मन्त्र दिया।

मुनरो ने लिखा है, एक स्वतन्त्र प्रेस और विदेशी राज एक दूसरे के विरुद्ध हैं और ये दोनों एक साथ नहीं चल सकते। भारतीय समाचार पत्रों पर यह बात खरी उतरती है। राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति तथा विकास में भारतीय साहित्य तथा समाचार पत्रों का भी

काफी हाथ था। इनके माध्यम से राष्ट्रवादी तत्त्वों को सत्त प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा। उन दिनों भारत में विभिन्न भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित होते थे, जिनमें राजनीतिक अधिकारों की माँग की जाती थी। इसके अतिरिक्त उनमें ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति की भी कड़ी आलोचना की जाती थी। उस समय प्रसिद्ध समाचार पत्रों में संवाद् कौमुदी, बाम्बे समाचार (1882), बंगदूत (1831), गस्तगुफ्तार (1851), अमृतबजार पत्रिका (1868), ट्रिब्यून (1877), इण्डियन मिरर, हिन्दू, पैट्रियाट, बंगलौर, सोमप्रकाश, कामरेड, न्यु इण्डियन केसरी, आर्य दर्शन एवं बन्धवा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। फिलिप्स के अनुसार, 1871 ई0 मे देशी भाषा में बम्बई प्रेसीडेन्सी और उत्तर भारत मे 62 तथा बंगाल और दक्षिण भारत में क्रमशः 28 और 20 समाचार पत्र प्रकाशित होते थे, जिनके नियमित पाठकों की संख्या एक लाख थी। 1877 ई0 तक देश में प्रकाशित होनेवाले समाचार पत्रों की संख्या 644 तक जा पहुँची थी, जिनमें अधिकतर देशी भाषाओं के थे। इन समाचार पत्रों में ब्रिटिश सरकार की अन्यायपूर्ण नीति की कड़ी आलोचना की जाती थी, ताकि जन साधारण में ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा एवं असन्तोष की भावना उत्पन्न हो। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिलता था। इन पत्रों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1878 ई0 में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' पास किया, जिसके द्वारा भारतीय समाचार पत्रों को बिल्कुल नष्ट कर दिया गया। इस एक्ट ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर को तेज कर दिया।

भारतीय साहित्यकारों ने भी देश की भावना को जागृत करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'वन्देमातरम्' के रूप मे देशवासियों को राष्ट्रीय गान दिया। इनसे भारतीयों में देश-प्रेम की भावना जागृत हुई। मराठी साहित्य में शिवाजी का मुगलों के विरुद्ध संघर्ष विदेशी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष बताया गया। श्री हेमचन्द्र बैनर्जी ने अपने राष्ट्रीय गीतों द्वारा स्वाधीनता की भावना को प्रोत्साहन दिया। श्री बिपिन चन्द्र पाल लिखते है, "राष्ट्रीय प्रेम तथा जातीय स्वाभिमान को जागृत करने में श्री हेमचन्द्र द्वारा रचित कविताएँ अन्य कवियों की ऐसी कविताओं में कहीं अधिक प्रभावोत्पादक थी।" इसी प्रकार केशव चन्द्र सेन, रवीन्द्र नाथ टैगोर, आर सी दत्त, रानाडे, दादा भाई नौरोजी आदि ने अपने विद्वतापूर्ण साहित्य के माध्यम से भारत में राष्ट्रीय भावना को जागृत किया। इन्द्र विद्या वाचस्पति के अनुसार, इसी समय माइकल मधुसुदन दत्त ने बंगाल में, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में, नर्मद ने गुजराती में, चिपलुणकर ने मराठी में, भारती ने तमिल में तथा अन्य अनेक साहित्यकारों ने विभिन्न भाषाओं में राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण उत्कृष्ट साहित्य का सजृन किया। इन साहित्यिक कृतियों ने भारतवासियों के हृदयों में सुधार एवं जागृति की अपूर्व उमंग उत्पन्न कर दी।

भारत का आर्थिक शोषण

मि0 गैरेट के अनुसार, "राष्ट्रीयता में शिक्षित वर्ग का अनुराग हमेशा ही कुछ हद तक धार्मिक और कुछ हद तक आर्थिक कारणों से हुआ है।" भारतीय राष्ट्रीयता पर यह बात पूरी उतरती है। ब्रिटिश सरकार की आर्थिक शोषण की नीति ने भारतीय उद्योगों को बिल्कुल नष्ट कर दिया था। यहाँ के व्यापार पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया था। भारतीय वस्तुओं पर जो बाहर जाती थी, भारी कर लगा दिया गया और भारत में आनेवाले माल पर ब्रिटिश सरकार ने आयात पर बहुत छूट दे दी। इसके अतिरिक्त अंग्रेज भारत से कच्चा माल ले जाते थे, इंग्लैण्ड से मशीनों द्वारा निर्मित माल भारत में भेजते थे, जो लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धों के निर्मित माल से बहुत सस्ता होता था। परिणामस्वरूप भारतीय बाजार यूरोपियन माल से भर गए एवं कुटीर उद्योग धन्धों का पतन हो जाने से करोड़ों की संख्या में लोग बेरोजगार हो गए। भारत का धन विदेशों में जा रहा था अतः भारत दिन-प्रतिदिन निर्धन होता गया। इसलिए 1880 ई0 में सर विलियम डिग्वी ने लिखा था कि करीब दस करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे है, जिन्हें किसी समय भी भर पेट अन्न नही मिलता, इस अधःपतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी और उन्नतिशील देश में कहीं पर भी दिखाई नहीं दे सकती है भारतीयों की आर्थिक दशा के बारे में आगलि के ड्यूक ने जो 1875.76 में भारत सचिव थे, लिखा है, "भारत की जनता में जितनी दरिद्रता है तथा उसके रहन-सहन का स्तर जिस तेजी से गिरता जा रहा है। इसका उदाहरण पश्चिमी जगत में कहीं नहीं मिलता है।"[13]

उद्योगों एवं दस्तकारी के पतन के कारण इनमें कार्यरत व्यक्ति कृषि की ओर गये जिससे भूमि पर दबाव बहुत अधिक बढ़ गया। परन्तु सरकार ने कृषि के वैज्ञानिक ढंग की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जिसके कारण किसानों की दशा इतनी खराब हो गई कि ७५% व्यक्तियों को पेटभर खाना भी नसीब नहीं होता था। अचानक फूट पड़नेवाले अकालों ने उनकी स्थिति को और अधिक दयनीय बना दिया। विलियम हण्टर ने लिखा है, "ब्रिटिश साम्राज्य में रैयत ही सबसे अधिक दयनीय है, क्योंकि उनके मालिक ही उनके प्रति अन्यायी है।" फिशर के शब्दों में "लाखों भारतीय आधा पेट भोजन पर जीवन बसर कर रहे हैं। भारतीयों के शोषण के बारे में डी0ई0 वाचा ने लिखा है, "भारतीयों की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश शासन काल में अधिक बिगड़ी थी। चार करोड़ भारतीयों को केवल दिन में खाना खाकर सन्तुष्ट रहना पड़ता था। इसका एक मात्र कारण यह था कि इंग्लैण्ड भूखे किसानों से भी कर प्राप्त करता था तथा वहाँ पर अपना माल भेजकर लाभ कमाता था। सारांश यह है कि अंग्रेजों के आर्थिक शोषण के विरुद्ध भारतीय जनता में असन्तोष था। वह इस शोषण से मुक्त होना चाहती थी। इसलिए भारतीयों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रियरूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। गुरमुख निहाल सिंह के शब्दों मे "इस तथ्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि बिगड़ती आर्थिक दशा तथा सरकार की राष्ट्र विरोधी आर्थिक नीति का अंग्रेज विरोधी विचारधारा तथा राष्ट्रीय भावना को जगाने में काफी हाथ था।"

जाति विभेद नीति

1857 ई0 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासकों ने जाति विभेद की नीति अपनाई। इस नीति के अनुसार वे भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। गुरुमुख निहाल सिंह के अनुसार, "विद्रोह के बाद भारत में आनेवाले अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारतीयों के बारे में विभिन्न धारणाएँ होती थी। वे मंच के तत्कालीन दास्य चित्रों के अनुसार भारतीयों को ऐसा जन्तु समझते थे जो आधा वनमानुष और आधा नीग्रो था, जिसे केवल भय द्वारा ही समझाया जा सकता था और जिसके लिए जरनल नील तथा उसके साथियों का घृणा और आतंक का व्यवहार ही उपयुक्त था।"

1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने सम्पर्क कम कर दिया। उनके निवास स्थान भारतीयों के निवास स्थान से बिल्कुल अलग थे। वे भारतीयों को काले लोग कहकर घृणा करते थे। होटल, क्लब, पार्क आदि स्थानों पर अंग्रेज भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। इस कारण अंग्रेजों ने रंग भेद की नीति के आधार पर भारतीयों पर अनेक अत्याचार किए। गैरेट ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "यूरोपियनों की जाति विभेद नीति तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित थी। प्रथम एक यूरोपियन का जीवन अनेक भारतीयों के बराबर है, द्वितीय, भारतीय केवल भय एवं दण्ड की भाषा को ही समझ सकते हैं एवं तृतीय, युरोपीयन भारत में लोक हित के दृष्टिकोण से ही नहीं बल्कि निजी स्वार्थ सिद्धि हेतु आए थे।"

न्याय के मामले मे भी जाति विभेद को स्थान दिया जाता था एक ही अपराध के लिए भारतीयों व अंग्रेजों के लिए अलग-अलग दण्ड निर्धारित थे। अंग्रेजों ने अनेक भारतीयों की हत्याएँ कर डाली, किन्तु उन्हें कोई दण्ड नहीं दिया गया। इस सम्बन्ध में मॉरीसन ने लिखा है, "यह एक महासत्य है जिसे छिपाया नहीं जा सकता कि अंग्रेजों द्वारा भारतीयों की हत्या की जाने की घटना एक-दो नहीं है। अमृत बाजार पत्रिका के एक अंक (11 अगस्त 1882) में तीन घटनाओं का जिक्र है, जिनमें हत्यारों को पूरी कानूनी सजा नहीं मिली। यूरोपियनों के मुकद्मों में शहरों से ज्यूरी बुलाए जाते थे। उनमें विजेता जाति का होने का अहंकार सबसे ज्यादा है, उनकी नैतिक भावना इस बात की अनुमति नहीं देती कि एक अंग्रेज को किसी भारतीय की हत्या के अपराध में अपनी जान देनी पड़े।"[10,11,12]

अंग्रेजों की इस जाति भेदभाव की नीति का भारतीयों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। अब उनके हृदय में ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। इस तथ्य से राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से संचार हुआ। गैरेट ने सही लिखा है, "भारतीय राष्ट्रीयता की बढ़ोत्तरी में उपरोक्त कटुता की भावना एक बहुत बड़ा कारण थी।"

सरकारी नौकरियों मे भारतीयों के साथ पक्षपात

1833 ई0 के चार्टर अधिनियम और 1858 ई0 की महारानी विक्टोरिया की घोषणा में कहा गया था कि सरकारी नौकरियों में नियुक्ति केवल योग्यता के आधार पर ही की जाएगी। भारतीय तथा यूरोपियनों के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाएगा, लेकिन व्यवहार में इस नीति का पालन करने के स्थान पर इसे भंग ही कर दिया गया।

अंग्रेजी शिक्षा के कारण, वकील, डाक्टर और अध्यापक तथा नौकरी करनेवालों का एक वर्ग उत्पन्न हुआ। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार का भारतीयों पर से विश्वास समाप्त हो गया था। अतः वे पढ़े लिखे भारतीयों को सरकारी नौकरी नहीं देना चाहती थी, इसलिए उनमें असन्तोष बढा। भारतीयों को उच्च पदों विशेष तथा 'भारत नागरिक सेवा' (ICS) से अलग रखने के लिए विधिवत् प्रयास किए गए। इस सेवा मे प्रवेश की आयु 21 वर्ष थी। इसकी परीक्षा इंग्लैण्ड में अंग्रेजी भाषा में होती थी। किसी भी भारतीय द्वारा ऐसी परीक्षा को पास करना अत्यन्त कठिन था। इसके बावजूद भी अगर कोई भारतीय सफल हो जाता था, तो उसे किसी-न-किसी बहाने से नौकरी में नहीं लिया जाता था। उदाहरणस्वरूप 1869 ई0 में श्री सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी ने ICS की परीक्षा पास कर ली परन्तु ब्रिटिश सरकार ने सेवा में प्रवेश करने के बाद भी मामूली-सी गलती पर उन्हें नौकरी से हटा दिया था। इसी प्रकार 1871 ई0 मे अरविन्द घोष ने इस परीक्षा को पास कर लिया। परन्तु उनकी नियुक्ति नहीं की गई, क्योंकि वे घोड़े की सवारी में प्रवीण नहीं थे। ब्रिटिश अधिकारी भारतीयों को उच्च पदों से वंचित रखने के लिए नए-नए बहाने ढूंढ़ते थे।

सन् 1871 ई0 मे ICS में प्रवेश की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी गई, ताकि भारतीय इस प्रतियोगिता में भाग न ले सकें। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने ब्रिटिश अन्याय का विरोध करने के लिए 1876 ई0 मे 'इण्डियन एसोसिएशन' की स्थापना की, किसे कांग्रेस की पूर्ववर्ती संस्था कहा जा सकता है। बनर्जी ने इस कार्य का विरोध करने के लिए एवं राष्ट्रीय जनमत को जागृत करने हेतु सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया। इससे अंग्रेज विरोधी आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला। श्री बनर्जी ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि "मेरे मामलों ने भारतीयों के हृदय मे भारी क्षोभ उत्पन्न कर दिया, उनमें यह विचार फैल गया कि यदि मैं भारतीय न होता तो मुझे इतनी कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़ती।"[5,8,7]

यातायात तथा संचार के साधनों का विकास

यातायात तथा संचार के साधनों के विकास में भी राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। ब्रिटिश सरकार ने देश में रेलों तथा सड़कों का जाल बिछा दिया। डाक, तार, टेलीफोन आदि की व्यवस्था हुई। इसके पीछे अंग्रेज सरकार का मुख्य उद्देश्य यह था कि विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजी सेनाएँ शीघ्रता से भेजी जा सकेगी, एवं दूर-दूर के प्रान्तों की सूचना शीघ्र प्राप्त हो जाएगी। इस विकास से भारतीयों को काफी लाभ हुआ। अब उनके लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना सुलभ हो गया। देश के भिन्न-भिन्न भागों मे रहनेवाले लोगों के बीच दूरी कम हो गई, वे एक दूसरे के निकट आने लगे। उनका आगामी सम्पर्क बढा और दृष्टिकोण व्यापक हुआ। समाचार पत्र देश के दूर-दूर के भागों में पहुँचने लगे। राष्ट्रवादियों का मिलना तथा पत्र व्यवहार करना भी

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.712 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 8, Issue 5, September 2021 |

आसान हो गया। अब वे एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण कर आन्दोलन को और अधिक उग्र बनाने लगे, जिनसे जन साधारण में जागृति आई। परिणामस्वरूप एकता की भावना अधिक प्रबल हो गई और राष्ट्रीय आन्दोलन को बल प्राप्त हो गया। गुरुमुख निहाल सिंह के शब्दों में ”संचार के इन साधनों ने सारे देश को एक कर दिया और भौगोलिक एकता एक मूर्तरूप वास्तविकता में बदल दिया।“

विदेशी आन्दोलन का प्रभाव

डॉ॰ आर.सी. मजूमदार ने लिखा है कि 19वीं शताब्दी मे यूरोप में जो स्वाधीनता संग्राम लड़े गए, उन्होंने भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को काफी प्रभावित किया। फ्रांस की 1830 ई0 एवं 1848 ई0 की क्रान्ति ने भारतीयों में बलिदान की भावना जागृत की। इटली तथा यूनान की स्वाधीनता ने उनके उत्साह में असाधारण वृद्धि की। आयरलैण्ड भी अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त होने का प्रयास कर रहा था, इससे भी भारतीय जनता काफी प्रभावित हुई। इटली, जर्मनी, रुमानिया और सर्विया के राजनीतिक आन्दोलन, इंग्लैण्ड मे सुधार कानूनों का पारित होना एवं अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम आदि ने भी भारतीयों को उत्साहित किया तथा उनमें साहस पैदा किया। परिणामस्वरूप वे स्वाधीनता प्राप्त करने के संघर्ष में जुट गए। सारांश यह है कि विदेशी आन्दोलनों ने भारतीयों मे देश भक्ति और देश प्रेम की भावना को विकसित करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

लार्ड लिटन की अन्याय पूर्ण निति

लार्ड लिटन (1876 - 1880) की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण राष्ट्रीय असन्तोष आरम्भ हुआ। परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीयता की भावना का जन्म हुआ। इस तथ्य की पुष्टि सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी के इस कथन से होती है-

कभी-कभी बुरे शासक की राजनीतिक प्रगति के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। लार्ड लिटन ने शिक्षित समुदाय में उस सीमा तक नए जीवन की लहर फूँक दी। जो कि कई वर्षों के आन्दोलन से सम्भव नहीं थी।

लार्ड लिटन ने भारत में निम्न अत्याचार किएः

- भारतीय लोकसेवा की आयु में कमी - 1876 ई0 में ब्रिटिश सरकार ने इण्डियन सिविल सर्विस मे सम्मिलित होने की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी, ताकि भारतीय इस परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकें। इसके विरुद्ध भारतीयों में तीव्र गति से असन्तोष फैला। सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी ने ’इण्डियन एसोसिएशन’ की स्थापना की, जिसने उसके विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाया। अन्ततः सरकार को मजबूर होकर आयु सीमा पूर्ववत करनी पड़ी।[1,2,3]

- दक्षिण में अकाल और शाही दरबार (1877) लार्ड लिटन ने जिस समय दिल्ली में एक विशाल दरबार का आयोजन किया, उस समय दक्षिण भारत में भयानक अकाल पड़ जाने से हजारों मनुष्य मौत के मुँह में जा रहे थे। किन्तु लिटन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत उसने महारानी विक्टोरिया के भारत साम्राजी की उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली में एक शानदार दरबार का आयोजन किया। इस शान-शौकत पर पानी की तरह पैसा बहाया गया। इस आयोजन में भारतीयों के असन्तोष को आग में घी का काम किया। भारत के समाचार पत्रों में इसकी कटु-आलोचना की गई। कलकत्ते के एक समाचार पत्र ने इस समारोह की आलोचना करते हुए यहाँ तक लिख दिया, ”जब रोम जल रहा था नीरो अपनी बाँसुरी बजा रहा था।” सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी ने एक प्रतिनिधि की हैसियत से इस समारोह में भाग लिया था। उसी समय उसके मस्तिष्क में यह भावना जागृत हुई, ”यदि एक स्वेच्छाचारी वायसराय की प्रशंसा के लिए देश के राजा तथा अमीर-उमराओं को एकत्र किया जा सकता है, तो देशवासियों को न्यायसंगत ढंग से, स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिए क्यों नहीं संगठित किया जा सकता।“ इस समय भारतीय लोग अन्न के अभाव में मृत्यु के ग्रास बन रहे थे और ब्रिटिश सरकार ने भारत से 80 लाख पौण्ड गेहूँ इंग्लैण्ड को निर्यात किया। इससे अधिक भारतीयों की पीड़ा पहुँचाने के लिए और कर भी क्या सकते थे।

- अफगानिस्तान पर आक्रमण : लॉर्ड लिटन ने साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य को कोई फायदा नहीं हुआ। इस युद्ध में दो करोड़ स्टर्लिंग व्यय हुआ जो भारत की निर्धन जनता से वसूल किया गया। भारतीयों में लिटन की इस नीति के विरुद्ध काफी असन्तोष फैला।

- शस्त्र अधिनियम (1878) : लॉर्ड लिटन ने 1878 ई0 में एक शस्त्र अधिनियम (Arms Act) पारित किया, जिसके अनुसार भारतीयों को हथियार रखने के लिए लाईसेन्स रखना पड़ता था। परन्तु अंग्रेजों के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था। इस अधिनियम ने भारतीयों को अधिक उत्तेजित कर दिया।

- वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (1878 ई0) : लॉर्ड लिटन की अन्यायपूर्ण नीति का समाचार पत्रों ने कड़ा विरोध किया। इससे परेशान होकर उसने 1878 ई0 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पारित कर दिया, जिससे भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों पर कठोर नियन्त्रण स्थापित हो गया। दूसरे शब्दों में, इस अधिनियम से समाचार पत्रों की स्वाधीनता को नष्ट कर दिया गया।

अब किसी भी समाचार को प्रकाशित करने से पूर्व ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। इस अधिनियम की इग्लैण्ड की संसद में भारी आलोचना हुई और भारत में भी सर्वत्र आलोचना हुई। बढ़ते हुए आन्दोलन से बाध्य होकर इस कानून को रद्द करना पड़ा।[2,3,5]

- आर्थिक नीति - लॉर्ड लिटन की आर्थिक नीति, असन्तोष उत्पन्न करनेवाली थी। उसने लंकाशायर के उद्योगपतियों को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट करने के लिए विदेशी सूती कपड़े के आयात कर हटा दिया, जिससे भारतीय सूती वस्त्र उद्योग को बहुत हानि पहुँची। इससे भारत सरकार की आय के बहुत बड़े साधन का सफाया हो गया और भारत में बेरोजगारी की समस्या उठ खड़ी हुई।

लॉर्ड लिटन के इन कार्यों के परिणामस्वरूप भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष बहुत उग्र हो गया। सर विलियम बैडरबर्न ने ब्लंट से कहा था "लॉर्ड लिटन के शासनकाल के अन्त में स्थिति विद्रोह की सीमा तक पहुँच गई थी।"

ईल्बर्ट बिल पर विवाद

1880 ई0 में लॉर्ड लिटन के स्थान पर लॉर्ड रिपन गवर्नर जनरल बनकर आए। उन्होंने प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक सुधार किए। इसके पश्चात् न्याय व्यवस्था में सुधार करने का निश्चय किया। इस समय न्याय के क्षेत्र में जाति विभेद विद्यमान था। भारतीय न्यायधीशों को यूरोपियन अपराधियों के अभियोग की सुनवाई का अधिकार प्राप्त नहीं था, जबकि अंग्रेज न्यायधीशों को यह अधिकार प्राप्त था। इसलिए रिपन ने अपनी कौंसिल के विधि सदस्य मि0 सी0पी0 इल्बर्ट को इस सम्बन्ध में एक विशेष विधेयक प्रस्तुत करने का कहा, इस पर 1883 ई0 में इल्बर्ट ने एक बिल पेश किया, इसे ईलबर्ट बिल कहते हैं। इसमें भारतीय मजिस्ट्रेटों को युरोपियनों के विरुद्ध अभियोग की सुनवाई करने और दण्डित करने के अधिकार देने की व्यवस्था थी। लेकिन यह विधेयक एक भीषण विवाद का कारण बन गया।

भारत में रहनेवाले अंग्रेजों ने इल्बर्ट विधयेक को अपना जातीय अपमान समझा। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण भारत और इंग्लैण्ड में अंग्रेजों ने संगठित होकर इसका विरोध किया तथा इसके विरुद्ध आन्दोलन चलाया। उन्होंने कहा, "काले लोग गोरों को लम्बी-लम्बी सजाएँ देंगे तथा उनकी स्त्रियों को अपने घर में रखेंगे।" यूरोपियनों ने इस विधेयक के खिलाफ संगठित रूप से आन्दोलन चलाने के लिए 'यूरोपियन रक्षा संघ' की स्थापना की और लगभग एक लाख पचास हजार रुपये चन्दा इकट्ठा किया। विधेयक की निन्दा करने हेतु विविध स्थानों पर सभाएँ आयोजित की गई। विधेयक का विरोध चरम सीमा पर पहुंच गया। सर हेनरी वाटन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "कलकत्ते के कुछ अंग्रेजों ने सरकारी भवन के सन्तरियों को वश में करके लॉर्ड रिपन को बाँध कर वापिस इंग्लैण्ड भेजने का षड्यन्त्र रचा और यह सब बंगाल के गवर्नर तथा पुलिस कमिश्नर की जानकारी में हुआ" अंग्रेजों के संगठित आन्दोलन के समक्ष रिपन को झुकना पड़ा और उसे इस विधेयक में संशोधन करना पड़ा। इसके अनुसार अब यह निश्चित किया गया कि भारतीय न्यायधीश तथा सेशन जज यूरोपियन अधिकारियों के मुकद्दमों पर अपना निर्णय दे सकेंगे। किन्तु ये यूरोपियन अधिकारी अपने मुकद्दमों में ज्यूरी बैठने की माँग कर सकेंगे। जिसमें कम-से-कम आधे सदस्य यूरोपियन होंगे। इस संशोधन से इस विधेयक की मूल भावना ही समाप्त हो गई।[5,7,8]

इस घटना ने भारतीय जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के शब्दों में "कोई भी स्वाभिमानी भारतीय अब आँख मूँदकर सुस्त नहीं बैठा रह सकता था। जो ईल्बर्ट विवाद के महत्त्व को समझते थे, उनके लिए यह देश भक्ति की महान पुकार थी।" वास्तव में ईल्बर्ट बिल के विरोधी आन्दोलन ने भारत को संगठित करने के लिए प्रेरित किया। सर हेनरी काटन के शब्दों में "इस विधेयक के विरोध में किए गए यूरोपियन आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीय विचारधारा को जितनी एकता प्रदान की उतनी तो विधेयक पारित होकर भी नहीं कर सकता था।" यूरोपियनों के आन्दोलन से प्रभावित होकर भारतीयों ने भी राष्ट्रीय संस्था के गठन का निश्चय किया। परिणामस्वरूप कांग्रेस की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। भारतीयों ने महसूस किया कि यदि हम भी अंग्रेजों की भाँति संगठित होकर ब्रिटिश सरकार का विरोध करें, तो हमे स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। श्री ए° सी° मजूमदार लिखते हैं, "इस आन्दोलन ने भारतीयों को यह भी अनुभव करा दिया कि यदि राजनीतिक प्रगति वांछनीय है, तो केवल एक राष्ट्रीय सभा द्वारा ही सम्भव है। इस सभा का सम्बन्ध विभिन्न प्रान्तों की स्वतन्त्र राजनीति से न होकर देश की एक व्यापक राजनीति से ही होना चाहिए।"

परिणाम

भारत में अंग्रेजों की विजय के पश्चात् भारतीय समाज में व्यापक रूपान्तरण हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का कारण मुगल साम्राज्य का पतन और देश का अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो जाना था। ब्रिटिश शासन पूर्व-मुस्लिम शासनों से अनेक बातों में भिन्न था। भारतीय लोगों की तुलना में अंग्रेजों की राष्ट्रीयता की भावना, अनुशासन, देश भक्ति और सहयोग कहीं अधिक दिखाई पड़ते थे। उनके इन गुणों ने भारतीय विशिष्ट वर्ग को भी प्रभावित किया। अंग्रेजी शासन के भारत की आर्थिक संरचना पर दूरगामी प्रभाव पड़े। उससे एक और देश में प्राचीन एशियायी समाज को आघात पहुँचा और दूसरी ओर पाश्चात्य समाज की स्थापना हुई। इससे देश में राजनैतिक एकता का निर्माण हुआ। उसके प्रभाव से देश में राष्ट्रीयता के आन्दोलन का विकास हुआ। उससे देश की कृषि व्यवस्था मे आमूल चूल परिवर्तन हुआ। अंग्रेजों के आने से पहले भूमि राजा की नहीं समझी जाती थी। उसे जोतनेवाले राजा

को कर दिया करते थे, अस्तु भूमि निजी सम्पत्ति भी नहीं मानी जाती थी। अंग्रेजों के आने से भूमि पर ग्रामीण समुदाय का अधिकार नहीं रहा, बल्कि वह व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति बन गई। इस प्रकार देश के कुछ भागों में जमीदारों और अन्य भागों मे किसानों का भूमि पर अधिकार हो गया। लार्ड कार्नवालिस के राज्यकाल में, बंगाल, बिहार और उड़ीसा में जमींदार वर्ग का उदय हुआ। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे दूरवर्ती परिवर्तन हुए। देश के अन्य भागों में रैयतवाड़ी प्रबन्ध से किसानों को उनके द्वारा जोती गई भूमि पर अधिकार दे दिया गया। सर टॉमस ने मद्रास के गवर्नर के रूप में सन् 1820 ई0 मे रैयतवाड़ी व्यवस्था प्रारम्भ की। इससे देश मे व्यापक, सामाजिक, राजनैतिक सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हुए। लगान देने की नई व्यवस्था में ग्रामीण पंचायत नहीं बल्कि जमींदार और किसान सीधे सरकार को कर देने लगे। इस प्रकार कृषि व्यवस्था व्यापार की स्थिति में आ गई और परम्परागत भारतीय ग्रामीण व्यवस्था का विघटन हुआ। क्रमशः कृषि व्यवस्था का रूपान्तरण होने लगा। भूमि पर निजी अधिकार स्थापित होने से भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े बढ़ने लगे। इस अपखण्डन से खेती पर बुरा प्रभाव पड़ा। लगान वसूल करने की नई प्रणाली से सरकारी कर्मचारियों के नवीन वर्ग का निर्माण हुआ। जिनका दूरवर्ती राजनीतिक महत्त्व है। देश की आर्थिक दशा बिगड़ने लगी, गरीबी बढ़ने लगी। गाँवों में लोगों पर कर्ज बढ़ने लगा, जिससे क्रमशः भूमि खेती करनेवालों के हाथ से निकल कर खेती न करनेवाले भू-स्वामियों के हाथ में जाने लगी। इससे भू-दासों के एक नवीन वर्ग का निर्माण हुआ, जिसके हित भू-स्वामियों के हित के विरुद्ध थे। कृषि के क्षेत्र मे एक ओर सर्वहारा भू-दास और दूसरी ओर परोपजीवी जमींदार वर्ग का निर्माण हुआ, जिनमें परस्पर संघर्ष और तनाव बढ़ने लगा। इन वर्गों के निर्माण से व्यापक, सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन हुए।[8,9,10]

ब्रिटिश शासनकाल में नगरीय अर्थव्यवस्था मे भी व्यापक परिवर्तन हुए। कुटीर उद्योगों को धक्का लगा। विदेशी शासन में उनके हितों पर कुठाराघात हुआ, उनके माल की खपत कम होती गई, जिससे क्रमशः परम्परागत उद्योग समाप्त होने लगे। कारीगरों का सामाजिक स्तर गिरने लगा और कारीगिरी के काम छोड़कर अन्य व्यवसायों लगने लगे। विदेशों से आए हुए बने-बनाये माल के मुकाबलों में देशी माल की खपत घटने लगी, जिसके परिणामस्वरूप भारत अधिकतर कच्चा माल उत्पादन करने का स्रोत बन गया और देश के बाजार विदेशी माल से भरे जाने लगे। इस पृष्ठभूमि देश में आधुनिक उद्योगों के विकास मे अत्यधिक महत्त्व है। अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए देश में यातायात और सन्देश वाहन के साधन बढ़ाये। उन्होने नये-नये उद्योगों की स्थापना की। इन सबसे धीरे-धीरे राष्ट्रीयता की भावना के विकास में सहायता मिली। अंग्रेजी पढ़े नये लोगो ने अंग्रेजों की आर्थिक नीति की कटु आलोचना की। देश मे उद्योगों के विकास से पूँजीपति वर्ग बढ़ने लगा। अधिकतर भारतीय उद्योगों में विदेशी पूँजी लगी हुई थी। इस प्रकार देश की अर्थ-व्यवस्था देश के लिए हानिकारक और अंग्रेजों के लिए लाभदायक थी, दूसरी ओर व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में उनका एकाधिकार बढ़ गया।[10,11]

निष्कर्ष

अंग्रेजों ने देश में एक ऐसे वर्ग के निर्माण के लिए अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया जो कि उन्हें शासन में सहायता दे सकें। पूर्व-ब्रिटिश भारत में अधिकतर शिक्षा धार्मिक शिक्षा थी जो संस्कृत पाठशालाओं तथा मुस्लिम मदरसों के माध्यम से दी जाती थी। ईसाईयों ने देश में आधुनिक शिक्षा का प्रचार किया, यद्यपि उनकी शिक्षा का एक उद्देश्य देश में ईसाईयों की संख्या बढ़ाना भी था, किन्तु उससे पश्चिमी तथा आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं को भी प्रोत्साहन मिला। अंग्रेजों ने सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त व्यावसायिक शिक्षा देने के लिए भी विद्यालय खोले। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से देश मे एक ऐसे विशिष्ट वर्ग का निर्माण हुआ जिसने राष्ट्रीय शिक्षा की ओर ध्यान दिया। यह वर्ग शिक्षा के महत्त्व को भलीभाँति जानता था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, अलीगढ़ आंदोलन ने भी शिक्षा को प्रोत्साहित किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ में मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। देश में अनेक जगह दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक विद्यालयों और कालेजों की स्थापना हुई। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से जहाँ एक ओर काले अंग्रेजों का वर्ग बढ़ा जो कि केवल जन्म से भारतीय और सब प्रकार से अंग्रेज थे, वहीं दूसरी ओर ऐसे पढ़े-लिखे वर्ग का भी निर्माण हुआ जो कि देश की प्राचीन परम्पराओं पर गर्व करते थे। इन्हीं लोगों ने देश में राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात किया। भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की चाहे जो भी आलोचना की जाए यह निश्चित है कि उससे देश मे राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। उससे राष्ट्रीयता, जनतन्त्रवाद और समाजवाद की लहर उत्पन्न हुई।[11,12,13]

अंग्रेजों से पहले भारत में मौलिक, राजनैतिक और प्रशासनिक एकता का सर्वथा अभाव था। अंग्रेजों ने समस्त देश में राजनैतिक और प्रशासनिक दृष्टि से सामान्य व्यवस्था स्थापित की थी उन्होंने अपने राज्य में कानून के राज्य की स्थापना की। ये कानून राज्य के प्रत्येक नागरिक पर लागू किए गए और इनको लागू करने के लिए देश में एक जटिल न्याय व्यवस्था का निमार्ण हुआ राज्य द्वारा नियुक्त न्यायाधीश कानूनों की व्याख्या करते थे। और राज्य के अधिनियमों को नागरिकों पर लागू करते थे। सम्पूर्ण देश में निचली अदालतों, उच्च न्यायालयों तथा संघीय न्यायालयों तथा काउंसिल की स्थापना हुई। जिसकी अपील प्रिवी काउंसिल में की जा सकती थी। इस प्रकार कानून रीति-रिवाजों पर आधारित न होकर अधिक निश्चित बन गए। कानून का राज्य स्थापित होने से स्थानीय पंचायतों के अधिकार कम हो गए तथा न्याय-व्यवस्था में एकरूपता की स्थापना हुई। अंग्रेजों के आने के पहले के भारत में और अंग्रेजी राज्य कानूनी व्यवस्था में भारी अन्तर दिखलाई पड़ता है जबकि पूर्व ब्रिटिश कानून अधिकतर धार्मिक स्ववृत्तियों पर आधारित था, ब्रिटिश कानून अधिनियम और जनतन्त्रीय मूल्यों पर आधारित था उसमें जाति वर्ग, प्रजाति वर्ग, लिंग के भेदभाव के बिना राज्य के प्रत्येक नागरिक को समान अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार ब्रिटिश शासन काल में भारतीय इतिहास में पहली बार देश की जनता में जनतन्त्रीय आधार पर एकता स्थापित हुई। कानूनी एकता के अतिरिक्त ब्रिटिश शासन में प्रशासनिक एकता की भी

स्थापना हुई, नगरीय में जिसमें सूबे की प्रशासनिक व्यवस्था समस्त देश में एक प्रकार की थी। लगान की व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन होने से देश में भूमि सम्बन्धी कानून व्यवस्था की स्थापना हुई, जिसमें भूमि क्रय-विक्रय और रहन-सहन के सम्बन्ध में समस्त देश में एक से कानूनों का प्रसार हुआ। आर्थिक क्षेत्र में ब्रिटिश सरकार ने समस्त देश में एक से सिक्के का प्रसार किया जिसमें व्यापार और क्रय-विक्रय मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

राष्ट्रवाद के जन्म के लिए कारणों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में इसका जन्म ब्रिटिश सरकार की नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दो विरोधी दृष्टिकोण सामने आते हैं- विकासवादी और प्रतिक्रियावादी। लेकिन इन दोनों ही स्वरूपों ने राष्ट्रवाद के जन्म में सहायता प्रदान की। जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है ब्रिटिश शासन में ही भारत में राजनीतिक एकता स्थापित हुई, पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार हुआ और यातायात के साधनों का विकास हुआ। इनसे यदि एक ओर ब्रिटिश शासन को लाभ हुआ तो दूसरी ओर अप्रत्यक्षरूप से राष्ट्रवाद के जन्म में भी योगदान मिला।

ब्रिटिश शासन के विकासशील स्वरूप ने यदि राष्ट्रवाद के जन्म के लिए अप्रत्यक्षरूप से योगदान किया तो उसके प्रतिक्रियावादी स्वरूप ने इस प्रक्रिया को तेज किया। ब्रिटिश शासन द्वारा भारत का आर्थिक शोषण, भारतीयों के साथ भेद-भाव, उन्हें सरकारी नौकरियों में स्थान न मिलना, प्रेस का गला घोटना, हथियार रखने या लेकर चलने पर रोक लगाना। साम्राज्यवाद के विस्तार के लिए युद्ध लड़ना जैसे कामों ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश शासन भारत के हित में नहीं है। अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं का मत था कि भारत की आर्थिक दुर्दशा का मूल कारण भारत में अंग्रेजी शासन है।[13]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने में आर्य समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान
2. ↑ "भारतीय स्वाधीनता संग्राम : राजनीतिक चेतना का विकास". मूल से 27 फ़रवरी 2017 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 26 फ़रवरी 2017.
3. ई.जे. हॉब्सबॉम (1089), नेशंस ऐंड नैशनलिज़्म सिंस 1789, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.
4. एस. सेठ (1995), मार्क्सिस्ट थियरी ऐंड नैशनलिस्ट पॉलिटिक्स, सेज, नयी दिल्ली.
5. ए. स्मिथ (1994), नैशनलिज़्म : अ रीडर, खण्ड 1, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.
6. सुनलिनी कुमार (2008), 'नैशनलिज़्म', राजीव भार्गव और अशोक आचार्य (सम्पा.), पॉलिटिकल थियरी : ऐन इंट्रोडक्शन, पियर्सन लोंगमेन, नयी दिल्ली.
7. Tamir, Yael. 1993. Liberal Nationalism. Princeton University Press. ISBN 0-691-07893-9
8. Will Kymlicka. 1995. Multicultural Citizenship. Oxford University Press. ISBN 0-19-827949-3
9. David Miller. 1995. On Nationality. Archived 2000-06-01 at the Wayback Machine Oxford University Press. ISBN 0-19-828047-5.
10. सुनलिनी कुमार (2008), 'नैशनलिज़्म', राजीव भार्गव और अशोक आचार्य (सम्पा.), पॉलिटिकल थियरी : ऐन इंट्रोडक्शन, पियर्सन लोंगमेन, नयी दिल्ली.
11. बेनेडिक्ट ऐंडरसन (1983), इमेजिंड कम्युनिटीज़ : रिफ्लेक्शंस ऑन द ओरिजिंस ऐंड ग्रोथ ऑफ़ नैशनल कोंशसनेस, वरसो, लंदन,
12. एल. ग्रीनफ़ील्ड (1992), नैशनलिज़्म : फ़ाइव रोड्स टु मॉडर्निटी, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज, एमए.
13. जे. मेआल (1989), नैशनलि ज़्म ऐंड इंटरनैशनल सोसाइटी, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.
14. सिंगी, शरद. "भारतीय राष्ट्रवाद की अन्तर्निहित विशेषताएं". hindi.webdunia.com. मूल से 24 जुलाई 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2020-06-05.